आध्यात्मिक स्वास्थ्य

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

स्व में अवस्थित होना स्वास्थ्य है। शरीर में आत्मा का वास है, किन्तु ऐसा नहीं है कि आत्मा शरीर से पृथक नहीं हो सकता। आत्मा और शरीर भिन्न–भिन्न है। शरीर में सुख–दुख की अनुभूति होती है, आत्म सुख–दुख से परे है। सभी प्रकार के द्वन्द्व शरीर तक ही सीमित है। आत्मा द्वन्द्वातीत है। आत्मा में रहना अध्यात्म में रहना है। बाहर का जगत इन्द्रियों तक सीमित है। आन्तरिक जगत आत्म का जगत है। इन्द्रियां सुख–दुख का संवेदन आत्मा को कराती हैं।

अध्यात्म का अर्थ है आत्मा में रहना। जीव और जगत् के भेद को जानना और मानना। संसार को ही सबकुछ मानकर न रहना। पारलौकिकता के बारे में चिंतन करना। इस संसार में मानव लौकिक और पारलौकिक जगत के विषय में चिंतन करता है। लौकिक से तात्पर्य इस लोक से है जिसमें हम रहते हैं। सभी प्राणी इस लोक में ही अपनी जीवन लीला करते हैं। एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणी तक सभी जीव हैं। चेतना का स्तर सब में भिन्न–भिन्न है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो लौकिक और पारलौकिक जगत के विषय में सोचता है और धर्म कर्म करता है। अन्य प्राणी केवल इन्द्रियों के वशीभूत होकर के ही कार्य करते हैं।

मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धितत्व है और वह विवेक से कार्य करता है। बुद्धि ही मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न करती है। आत्मा तो सब में है। सभी आत्माएं समान है। मानव ही आत्मचिंतन करता है। वेदों से लेकर के अधुनातन साहित्य तक के सभी ग्रंथ आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत के बारे में चिंतन करते है। आत्मा का विवेचन दर्शन शास्त्र का प्रमुख विषय रहा है। जितने भी दर्शन है सभी ने आत्मा के बारे में चिंतन किया है और सत्य का साक्षात्कार करने का प्रयास किया है। आत्मा के स्वरूप के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। योगी लोग आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं। भोगी लोग इस संसार को ही सबकुछ मानकर उसी में भ्रमण करते हैं।

आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। इसकी प्राप्ति के बाद किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। सब प्रकार के दोषों से रहित होने पर सम्यक् ज्ञान, ब्रह्मचर्य और सत्य के द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है। सम्यक् ज्ञान ही एक ऐसा आचार है जिसके द्वारा निखिल कर्मों का विलय किया जा सकता है। इस ज्ञान की उपलब्धि में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये सत्यानुष्ठान की महती आवश्यकता होती है। सत्य का अनुष्ठान और तपस्या के द्वारा ही सम्यक्ज्ञान की उपलब्धि होती है।

आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो किसी इन्द्रिय से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं।

पुरुष या आत्मा को चेतन तत्त्व तथा प्रकृति को अचेतन या जड़तत्त्व कहा गया है। पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुये यहां कहा गया है कि पुरुष नित्य, साक्षी, केवल, निस्त्रैगुण्य, माध्यस्थ उदासीन, द्रष्टा और अकर्त्ता है। पुरुष चेतन है। चेतन ही विषयों का ज्ञाता तथा द्रष्टा होता है। इसे अचेतन नहीं प्राप्त कर सकता। आत्मा ही वह द्रव्य है जिसमें बुद्धि, सुख–दुःख, राग–द्वेष, इच्छा प्रयत्न आदि गुण रहते हैं। ये गुण शरीर के नहीं आत्मा के ही हो सकते हैं।

आत्मा देह, इन्द्रिय आदि से भिन्न है, नित्य और व्यापक है। मन से उसका प्रत्यक्ष होता है तथा मैं जानता हूं, मैं करता हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं इत्यादि से आत्मा का अस्तित्त्व प्रकट होता है। विद्यायें दो हैं, इनमें से जो पराविद्या अर्थात् आत्मविद्या को जानता है वही सच्चा ज्ञाता है वह संसार सागर को पार कर जाता है। उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है– एकमेवाद्वितीयम्, सर्वंखल्विदं ब्रह्म इत्यादि महावाक्यों से आत्मा और ब्रह्म में अभेद प्रदर्शित किया गया है। यही परम सत है। 'वह क्या है जिसका ज्ञान हो जाने पर शेष सबकुछ स्वतः ज्ञात हो जाता है।

वह क्या है? जो सदा सचेतन रहता है, सृष्टिकार्य में संलग्न रहता है, यद्यपि शरीर निद्रा में अचेत पड़ा रहता है। वह कौन सा मूलतत्त्व है? जिससे जीवन का वृक्ष अंधे अंवच्छेदक मृत्यु द्वारा बारम्बार काटे जाने पर भी नित्य नवीन उदित होता रहता है। परमतत्त्व अंतिम तत्त्व है, सर्वाधार है, सभी वस्तुओं का मूलस्थान है। उसी को मूलतत्त्व कहा जा सकता है, जिससे इस जगत् की उत्पत्ति हुयी है, जो सभी वस्तुओं की सत्ता का आधार है और जिसमें अन्ततः इन सभी वस्तुओं का लय हो जाता है। अतः ब्रह्म ही परमतत्त्व है। इसे ही आत्मतत्त्व भी कहते हैं।